अध्याय
6

डॉ. चन्द्रशेखर वेंकटरमन

जन्म एवं शिक्षा

चन्द्रशेखर वेंकट रमन का जन्म दक्षिण भारत के त्रिचनापल्ली(तमिलनाडु) नामक नगर में 7 नवंबर 1888 ई.को एक ऐसे ब्राह्मण परिवार में हुआ था जो विद्या के क्षेत्र में विख्यात था। आपके पिता का नाम चन्द्रशेखर अय्यर तथा माता का नाम पार्वती अम्मल था। रमन के जन्म के समय श्री अय्यर त्रिचनापल्ली में हाई स्कूल में अध्यापक थे। बाद में वे विजगापट्टम के हिन्दू कालेज में भौतिकी विज्ञान के प्राध्यापक हो गए। रमन के पिता अपने विषय के प्रकाण्ड विद्वान थे और उनकी विद्वत्ता की कीर्ति आसपास के क्षेत्रों में फैली हुई थी। बालक रमन पर भी अपने पिता का प्रभाव पड़ा और आपने भी हाई स्कूल तक पहुँचते-पहुँचते विज्ञान की अनेक पुस्तकें पढ़ लीं। विजगापट्टम में ही रमन की आरम्भिक शिक्षा हुई और 12 वर्ष की अल्प आयु में ही आपने मैट्रिकुलेशन परीक्षा सम्मानपूर्वक पास कर ली। सन् 1901 में आपने एफ.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की, किन्तु आपका विज्ञान विषय नहीं था।

एफ.ए. की परीक्षा के उपरांत रमन का विज्ञान-प्रेम फिर जागा और आपने प्रेसीडेंसी कालेज मद्रास से बी.ए.की परीक्षा विज्ञान के साथ उत्तीर्ण की। बी.ए. कक्षाओं में रमन सबसे कम उम्र के छात्र थे। जिस समय आपने बी.ए. कक्षाओं में पढ़ने के लिए प्रवेश लिया, तो अंग्रेजी के प्रोफेसर इलियट ने आपको किसी छोटी कक्षा का विद्यार्थी समझा, जो भूल से बी.ए. की कक्षा में चला आया हो। बी.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास करने के कारण आपको कई स्वर्ण-पदक और पारितोषिक विश्वविद्यालय की ओर से मिले। पूरे विश्वविद्यालय में आप ही उस वर्ष प्रथम श्रेणी में आये थे और भौतिक विज्ञान का 'अरणी स्वर्ण पदक' भी आपको मिला । कालेज के प्रधानाचार्य रमन की प्रतिभा से बड़े प्रभावित थे। उन्होनें आपको मनचाहे प्रयोगों को करने की पूरी-पूरी सुविधाएँ दे दीं। विज्ञान के साथ-साथ आपने गणित तथा यन्त्र विज्ञान का भी अध्ययन किया। विद्यार्थी-जीवन में रमन घंटों प्रयोगशाला में बैठे रहते। भौतिक विज्ञान में उसी कालेज में इन्होनें एम.ए. की कक्षा में प्रवेश लिया, इसी समय आपकी मौलिक अन्वेषण की प्रतिभा का प्रथम परिचय मिला, जबकि नाद-शास्त्र के लिए पुराने प्रयोग से हटकर आपने एक नया प्रयोग ढूँढ़ निकाला। आपके सहपाठी आपकी लगन पर आश्चर्य करते। प्रोफेसर ने आपकी अन्वेषण रुचि देखकर कक्षा में नियमित रूप से जाने के बन्धन को आपके लिए शिथिल कर दिया।

एम.ए. की परीक्षा भी रमन ने प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की । इन्होनें भौतिक विज्ञान में विश्वविद्यालय का रिकार्ड तोड़ दिया। इससे पहले भौतिक विज्ञान में न तो कोई प्रथम श्रेणी में आया था और न ही किसी को इतने अंक ही मिले थे जितने इन्हें। सरकार ने भी आपकी असाधारण प्रतिभा को देखकर विदेश जाने के लिए छात्रवृत्ति देना स्वीकार कर लिया, किन्तु अस्वस्थता के कारण आप विदेश न जा सके। लाचार होकर आप अर्थ-विभाग की प्रतियोगिता-परीक्षा में बैठे। प्रतियोगिता-परीक्षा में बैठने के लिए इतिहास,संस्कृत आदि नए विषयों का आपको अध्ययन करना पड़ा क्योंकि प्रतियोगिता परीक्षा में इन विषयों में अधिक अंक मिलते हैं। इस परीक्षा में भी आप सर्वप्रथम घोषित हुए और आपकी नियुक्ति डिप्टी डायरेक्टर- जनरल के पद पर कलकत्ता में हो गई।

प्रतियोगिता-परीक्षा के परिणामस्वरूप इन्हें मनचाही पत्नी मिलने में बड़ी सहायता मिली। श्री कृष्णस्वामी अय्यर मद्रास में सामुद्रिक चुंगी विभाग के सुपरिन्टेन्डेन्ट थे। रमन प्राय: उनके यहाँ आया-जाया करते थे। उनकी पत्नी रुक्मणी अम्मल ने रमन को अपना दामाद बनाना निश्चित कर लिया था, किन्तु कृष्ण स्वामी इसके लिए पहले तैयार न थे। प्रतियोगिता-परीक्षा में सर्वप्रथम आ जाने से वे इस संबंध के लिए तैयार हो गए। जाति वालों ने इस विवाह का विरोध भी किया,परन्तु वह रुक न सका।

विज्ञान की तरफ झुकाव

अर्थ विभाग में काम करने पर भी रमन का ध्यान सदैव विज्ञान की ओर लगा रहता था। एक दिन कोलकाता में ट्राम में बैठे कार्यालय से घर जा रहे थे। रास्ते में इन्होनें एक साइनबोर्ड देखा, जिस पर 'भारतीय वैज्ञानिक अनुसंधान परिषद' लिखा था, आप ट्राम से उतर कर परिषद् में पहुँच गए। परिषद् के मंत्री को इन्होंने अपने प्रकाशित लेखों को दिखाया और अनुसंधान करने की इच्छा व्यक्त की। मंत्री महोदय इनके लेखों से बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने अनुसंधान की तो पूरी सुविधा रमन को दी, साथ ही परिषद का सदस्य भी बना लिया। कोलकाता से आपका स्थानांतरण रंगून हो गया। वहाँ भी रमन ने अपनी वैज्ञानिक खोजों को जारी रखा। 1910 ई. में आपके पिता का देहान्त हो गया और आप छ: महीने की छुट्टी लेकर मद्रास आ गए। इसके बाद आपकी नियुक्ति कोलकाता में डाकतार विभाग में एकाउंटेंट पद पर हो गयी। रमन केवल वैज्ञानिक मामलों में दिलचस्पी लेते हों, ऐसी बात न थी। कार्यालय में उनका इतना दबदबा रहता कि कोई भी कर्मचारी ढिलाई न दिखाने पाता। सरकार ने आपके कार्य से प्रसन्न होकर आपको सेक्रेटेरिएट में बुलाना चाहा, किन्तु आपने स्वीकार नहीं किया।

कोलकाता विश्वविद्यालय

कोलकाता में रहकर रमन ने वीणा, मृदंग, पियानो आदि वाद्य यंत्रों के शाब्दिक गुणों का अध्ययन किया। इनकी इस खोज ने संसार में तहलका मचा दिया । 1914 ई. में कोलकाता में साइंस कालेज खोला गया। सर आशुतोष मुकर्जी रमन की प्रतिभा से परिचित थे, अत: उन्होंने आपको भौतिक विज्ञान के प्रोफेसर पद पर बुलाया। कम लोगों को विश्वास था कि आप सरकारी नौकरी छोड़कर कम पैसे पर यह पद स्वीकार करेंगे, किन्तु सर आशुतोष के कहने पर आपने सरकारी नौकरी छोड़ दी और आचार्य-पद स्वीकार कर लिया। 29 वर्ष की आयु में सन् 1917 ई. में आपने कोलकाता विश्वविद्यालय में काम करना आरम्भ किया। विश्वविद्यालय में रहकर आपने बहुत ही महत्त्वपूर्ण अनुसंधान किए। सन् 1912 में ब्रिटेन में ब्रिटिश साम्राज्य के सभी विश्वविद्यालयों की कॉन्फ्रेंस हुई । कोलकाता विश्वविद्यालय ने आपको अपना प्रतिनिधि बनाकर इंग्लैण्ड भेजा।

विदेश यात्रा व रमन-प्रभाव की नींव

ब्रिटेन की यात्रा के अवसर पर रमन को समुद्र के नीले रंग को ध्यान से देखने का अवसर मिला। यात्रा से वापस लौटकर आपने अपनी प्रयोगशाला में अनुसंधान से यह पता लगाया कि लहरों पर प्रकाश के कारण जल नीला दिखाई देता है। आकाश का रंग भी इसी प्रकार नीला दिखाई देता है। आपके प्रयोग विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए और चारों ओर आपकी विद्वत्ता की धूम मच गई। संसार के बड़े-बड़े वैज्ञानिकों में आपकी गणना होने लगी।

ब्रिटेन के अतिरिक्त आप अमरीका, रूस तथा यूरोप के अन्य देशों में भी गए। अमरीका के विख्यात वैज्ञानिक प्रोफेसर मिलिकन ने स्वयं आकर आपसे भेंट की। 1922 ई. में कोलकाता विश्वविद्यालय ने आपकी अमूल्य सेवाओं के उपलक्ष्य में डी.एस.सी. की सम्मानित उपाधि से आपको विभूषित किया। सन् 1914 में लन्दन की रॉयल सोसाइटी ने आपको फेलो चुना। प्रकाश सम्बन्धी खोजों पर भाषण देने के लिए कनाडा में आपको बुलाया गया। वहाँ के ग्लेशियर देखते समय आप हरे और नीले रंग से मिले हुए बर्फ के टुकड़ों को देखकर मुग्ध हो गए। उन्होनें एक टुकड़ा काट लिया, किन्तु उसमें कोई रंग नहीं था। इससे वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्रकाश का परिक्षेपण पारदर्शक पदार्थों में ही नहीं होता, अपितु बर्फ जैसे ठोस पदार्थों में भी होता है। साबुन के बुलबुलों के सम्बन्ध में भी रमन ने इसी प्रकार के प्रयोग किए और सन् 1928 में आपने नया आविष्कार कर दिखाया। जिसे 'रमन प्रभाव' कहते हैं। 'रमन प्रभाव' के द्वारा आपने यह सिद्ध कर दिया कि जब अणु प्रकाश बिखेरते हैं तो मूल प्रकाश में परिवर्तन हो जाता है। और नई किरणों के कारण परिवर्तन दिखता है। 'रमन प्रभाव' के आधार पर आधुनिक वैज्ञानिकों ने बड़े-बड़े आविष्कार किए हैं।

विज्ञान के नोबेल पुरस्कार विजेता

सन् 1929 में मद्रास में होने वाली भारतीय विज्ञान कांग्रेस के आप अध्यक्ष चुने गए। आपको विभिन्न संस्थाओं ने सम्मानित किया और पुरस्कार प्रदान किए। ब्रिटिश सरकार ने भी आपकी योग्यता से प्रभावित होकर 1929 ई. में आपको 'सर' की उपाधि दी। 1930 ई. में आपको भौतिक विज्ञान का 'नोबेल पुरस्कार' रमन प्रभाव के अनुसंधान के उपलक्ष्य में मिला। एशिया के आप प्रथम वैज्ञानिक थे जिन्हें उक्त पुरस्कार मिला। आप स्कॉटहोम गए और वहाँ पुरस्कार प्राप्त किया। देश और विदेश के अनेक विश्वविद्यालयों ने आपको डी.एस.सी. अथवा पी.एच.डी. की सम्मानित उपाधि दी और आपका सम्मान किया।

कोलकाता विश्वविद्यालय से मुक्त होकर सरकार के आग्रह पर आपने बंगलौर के 'इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ साइन्स' में अनुसंधान-कार्य के संचालक का पद स्वीकार कर लिया। बंगलौर में आकर रमन ने भौतिक विज्ञान की एक प्रयोगशाला स्थापित की और सन् 1941 में आपको अमरीका का प्रसिद्ध ' फ्रेंकलिन पुरस्कार' प्रदान किया गया। 1943 ई. में आपने बंगलौर में ही 'रमन इन्स्टीट्यूट' की स्थापना की। इन्स्टीट्यूट में भौतिक-विज्ञान विषय पर अनुसंधानकार्य होता है। 1954 ई. में भारत सरकार ने अपना सर्वोच्च सम्मान 'भारत रत्न' आपको प्रदान किया। 1957 ई.में सोवियत रूस ने 'लेनिन शान्तिपुरस्कार' देकर आपको सम्मानित किया।

व्यक्तित्व

डॉ. रमन ने स्वयं तो मौलिक अनुसंधान किए ही, साथ में अपने विद्यार्थियों को भी वे अनुसंधान की ओर प्रेरित करते रहते। डॉ. के. एस. कृष्णन् जैसे वैज्ञानिक भारत को आपकी ही देन थे। वे स्वभाव के सरल और विनीत, तथा अभिमान से तो अछूते थे। अपने कार्य को तत्परता, परिश्रम और एकाग्रता से करना उनका विशेष गुण था। अनुसंधान कार्य में वे किसी का हस्तक्षेप पसन्द नहीं करते थे। यही कारण था कि भारत सरकार के बुलाने पर उन्होनें राज्याश्रय स्वीकार नहीं किया। उनका कहना था ''वैज्ञानिक का मूल स्थान सरकारी कार्यालयों में नहीं, उनकी अपनी प्रयोगशाला में है।'' वे जो भी कार्य करते, उसमें लोकहित की भावना रहती। ऐसा नहीं है कि डॉ. रमन केवल वैज्ञानिक ही थे।

आपको साहित्य से भी विशेष रूचि थी। बचपन में ही श्रीमती एनी बेसेंट से प्रभावित हो चुके थे। अपने बगीचे को सँवारना भी उन्हें प्रिय था। इसके अतिरिक्त जब वे थके होते, तो संगीत का रसास्वादन करते। विनोदप्रिय तो वे स्वभावत: थे। छोटे-छोटे बच्चों के साथ खेलने में आपको विशेष आनंद आता था। डॉ. रमन का देहान्त 82 वर्ष की आयु में 21 नवम्बर, सन् 1970 को बंगलौर में हुआ।

डॉ. रमन जैसे वैज्ञानिक भारत के गौरव हैं।

अभ्यास

1. डॉ. रमन छात्रवृत्ति मिलने के बाद भी विदेश क्यों नहीं जा सके?
2. ब्रिटेन-यात्रा के समय डॉ. रमन ने क्या-क्या देखा?
3. डॉ. रमन ने किन-किन वाद्ययंत्रों के गुणों का अध्ययन किया?
4. डॉ. रमन ने किन-किन देशों का भ्रमण किया?
5. ''डॉ. रमन का जीवन तत्परता, परिश्रम और एकाग्रता से पूर्ण था''-इस कथन की विवेचना कीजिए।
6. एक महान वैज्ञानिक के रूप में डॉ. रमन की उपलब्धियाँ बताइए।
7. प्रतियोगिता-परीक्षा में सफल होने के लिए डॉ. रमन ने किस प्रकार तैयारी की? लिखिए।
8. 'रमन प्रभाव एक महत्वपूर्ण खोज थी' विस्तार से इसके बारे में बताइए।
9. डॉ. वेंकट रमन की कार्य प्रणाली से आप किस प्रकार प्रेरणा ग्रहण करेंगे? स्पष्ट कीजिए।

योग्यता विस्तार

1. डॉ. रमन जैसे वैज्ञानिक भारत के गौरव हैं। आप भारत के अन्य प्रसिद्ध वैज्ञानिकों का जीवन परिचय अपने विद्यालय की पुस्तकालय से प्राप्त कर पढ़िए।
2. डॉ. रमन को प्राप्त होने वाले पुरस्कारों और सम्मानों की सूची बनाइए।
3. विज्ञान प्रदर्शनी के लिए अपने शिक्षक के मार्ग दर्शन में एक मॉडल तैयार कीजिए तथा उसे प्रदर्शनी में अवलोकनार्थ रखिए।
4. अन्य वैज्ञानिकों एवं उनकी खोजों से सम्बन्धित प्रमुख घटनाओं का संकलन कीजिए।

* * *

अध्याय
7

सरजू भैया

रामबृक्ष बेनीपुरी

सरजू मैया नहीं, सरजू भैया । यह हमारे गाँव की विशेषता है कि कभी-कभी मर्द गंगा,यमुना और सरजू हो जाते हैं। इस बारे में औरतें ही सौभाग्यशालिनी हैं, प्राय: उनके नामों में ऐसे लिंग-संबंधी अनर्थ नहीं होते।

हाँ, तो सरजू भैया! मेरे घर से सटा हुआ जो एक घर है- एक तरफ दो खपरैल के मकान ,एक तरफ मिट्टी की दीवार पर फूस के छप्पर एक तरफ दो झोपड़े, एक तरफ मकान नहीं सिर्फ छोटा-सा आँगन निकाला हुआ- उसी घर के सौभाग्यशाली मालिक हैं हमारे सरजू भैया। सरजू भैया का छोटा भाई नहीं रहा, और मैने प्रथम संतान के रूप में ही अपनी माँ की गोद भरी; अत: हम दोनों ने परस्पर एक नाता जोड़ लिया है। वह मेरे बड़े भाई हैं, मैं उनका छोटा भाई।

गाँव के सबसे लम्बे और दुबले आदमियों में सरजू भैया की गिनती हो सकती है। रंग साँवला, बगुले-सी बड़ी-बड़ी बाँहे! कमर में धोती पहने, कंधे पर अँगोछी डाले, जब खड़े होते हैं, आप उनकी पसलियों की हड्डियाँ गिन लीजिए। नाक खड़ी,लम्बी। भवें सघन। बड़ी-बड़ी आँखें, कोटरों में धँसी। गाल पिचके। अंग-अंग की शिराएँ उभरीं। कभी-कभी मालूम होता , मानो ये नसें नहीं, उनके शरीर को किसी ने पतली डोरों से जकड़ रखा है।

ऊपर की तस्वीर निस्सन्देह किसी भुखमरे,मनहूस आदमी की मालूम होती है। किन्तु , क्या बात ऐसी है? सरजू भैया मेरे गाँव के चन्द जिन्दादिल लोगों में से है। बड़े मिलनसार, मजाकिया और हँसोड़।

वह दिल खोलकर जब हँसते हैं। शरीर भर में जो सबसे छोटी चीजें उन्हें मिली हैं, वे उनके पंक्तिबद्ध छोटे-छोटे दाँत, तब बेतहाशा चमक पड़ते हैं, अंग-अंग हिलने-डुलने लगते हैं, जैसे हर अंग हँस रहा हो। और सरजू भैया के पास इतनी सम्पत्ति है कि वह खुद या अपने परिवार के ही पेट नहीं भर सकते, आगत-अतिथि की सेवा-पूजा भी मजे में कर सकते हैं।

तो फिर यह हड्डियों का ढाँचा क्यों? मैं जबाव में एक पुरानी कहावत पेश करूँगा। काजी जी दुबले क्यों?- शहर के अंदेशे से।

हाँ सरजू भैया की जो हालत है, वह अपने कारण नहीं,दूसरों के चलते। पराये उपकार के चलते उन्होंने न सिर्फ अपना यह शरीर सुखा लिया है, बल्कि अपनी संपत्ति की भी कुछ कम हानि नहीं की है।

उनके पिता , जो गुमाश्ता जी कहलाते थे, मेरे गाँव के अच्छे किसानों में से थे। साफ- सुन्दर उनका मकान और अच्छा-खासा बैठक खाना था, जहाँ आज सरजू भैया की यह राम मँड़ैया है। खेतीबारी तो थी ही, रुपये और गल्ले का अच्छा लेनदेन था। परिवार भी बड़ा और खर्चीला नहीं था। लेकिन, उनके मरते ही सरजू भैया ने लेन-देन चौपट किया, बाढ़ ने खेती बर्बाद की और भूकम्प ने घर का सत्यानाश किया। उनका लेन-देन इतना अच्छा था कि वह शायद खेती को भी सँभाल देता, घर भी खड़ा कर सकता किन्तु, सरजू भैया और लेन-देन?

लेन-देन, जिसे नग्न शब्दों में सूदखोरी कहिए, चाहता है, आदमी आदमीपन को खो दे, वह जोंक, खटमल नहीं, चीलर बन जाए। काली जोंक और लाल खटमल का स्वतंत्र अस्तित्व है। हम उनका खून चूसना महसूस करते हैं, हम उनमें अपना खून प्रत्यक्ष पाते हैं और देखते हैं। लेकिन चीलर? गंदे कपड़े में, उन्हीं सा काला कुचैला रंग लिये वह

चीलर चुपचाप पड़ा रहता है और हमारे खून को यों धीरे-धीरे चूसता है और तुरंत उसे अपने रंग में बदल देता है कि उसका चूसना हम जल्द अनुभव नहीं कर सकते और अनुभव करते भी हैं, तो जरा सी सुगबुगी या ज्यादा-से-ज्यादा चुनमुनी मात्र और अनुभव करके भी उसे पकड़ पाने के लिए तो कोई खुर्दबीन ही चाहिए।

सरजू भैया चीलर नहीं बन सकते थे। उनके इस लम्बे शरीर में जो हृदय मिला है वह शरीर के ही परिमाण से है! जो भी दुखिया आया, अपनी विपदा बताई, उसे देवता-सा दे दिया और वसूलने के समय जब वह आँखों में आँसू लाकर गिड़गिड़ाया, तो देवता ही की तरह पसीज गए। सूद कौन, कुछ दिनों में मूलधन भी शून्य में परिणित हो गया।

बाढ़ और भूकम्प ने उनके खेत और घर को बर्बाद किया जरूर , लेकिन सरजू भैया, मेरा यकीन है , आज फटेहाली से बहुत-कुछ बचे रहते, यदि लेन-देन के बाद भी वह इन दोनों की तरफ ही पूरा ध्यान दिए होते। यह नहीं, कि वह जी चुरानेवाले या आलसी और बोदा गृहस्थ है। नहीं, ठीक इसके खिलाफ-चतुर, फुर्तीला और काम-काजी आदमी हैं। लेकिन करें तो क्या? उन्हें दूसरे के काम से ही कहाँ फुर्सत मिलती है!

गंगोबाई के घर में बच्चा बीमार है, वैद को बुलाने कौन जाएगा, सरजू भैया ! हिरदे को बाजार से कोई सौदा-सुलफा लाना है, वह किसे भेजें, सरजू भैया को? खबर आई है, रामकुमार के मामाजी अपने गाँव में सख्त बीमार हैं, वहाँ किसे भेजा जाए ; सरजू भैया से बढ़कर कौन दूसरा धावन होगा? परमेसर को एक रजिस्टरी करानी है, शिनाख्त कौन करेगा, सरजू भैया ; किसी के घर में शादी-ब्याह,यज्ञ-जाप हो; और सरजू भैया अस्तव्यस्त , किसी की मौत हो जाने पर, यदि वह अँधेरी रात में हो, तो निश्चय ही उसका कफन खरीदने का जिम्मा सरजू भैया पर रहेगा। यों गाँव भर के लोगों का बोझ अपने सिर पर लेकर सरजू भैया ने न अपने खेत और अपने घर को मटियामेट किया है, बल्कि इसी उम्र में अपनी कमर भी झुका ली है। दिन हो या रात, चिलचिलाती दुपहरिया हो या अँधेरी अधरतिया , सरजू भैया के सेवा-सदन का दरवाजा हमेशा खुला रहता है। विक्टर ह्यूगो ने अपनी अमर कृति 'ला मिजरेबल' में कहा है-डाक्टर का दरवाजा कभी बन्द नहीं रहना चाहिए और पादरी का फाटक हमेशा खुला होना चाहिए। सरजू भैया को निस्सन्देह इन दोनों का रुतबा अकेले हासिल है।

मेरे क्षुद्र विचार से सरजू भैया का व्यक्तित्व अनुकरणीय,अनुसरणीय ही नही,वंदनीय,पूजनीय है। जब तक उन्हें देखता हूँ, मेरा 'ज्ञानी' मस्तक आप-से-आप उनके चरणों में झुक जाता है। लेकिन मेरे मन में सबसे बड़ी चोट लगती है तब, जब देखता हूँ, इस नर-रत्न की कद्र कहाँ तक होगी, बहुत से लोग इन्हें सुधुआ समझ कर ठगने की चेष्टा करते हैं। यदि यही बात होती, तो भी बर्दाश्त की जा सकती, लेकिन यही नहीं, इन्हें जब तब झंझटों में डालने की कोशिशें होतीं और यदि अकस्मात् झंझटों में पड़ जाते , तो उससे निकालने की क्या बात, इनके तड़पने का तमाशा देखने में लोग मजा अनुभव करते हैं।

अभी थोड़े दिनों की बात है। एक दिन सरजू भैया मेरे सामने आकर खड़े हुए। मैं कुछ पढ़ रहा था। सिर नीचा किए ही कहा, बैठिए भैया । किन्तु भैया बैठेंगे क्या ,उनकी तो घिग्गी बँधी है और आँखों से आँसू जा रहे हैं। दुबारा कहने पर भी जब नहीं बैठे , तो उनकी ओर नजर उठाई। उनका चेहरा देख दंग रह गया। मैं सन्न, क्या बात है यह? बहुत आश्वासन और आग्रह पर उनकी जीभ हिली। मालूम हुआ, उनके घर में एक छोटी-सी घटना हो गई है ऐसी घटनाएँ अपने ही गाँव में मैने कई बार होते देखी हैं। लेकिन किसी ने उस ओर ध्यान नहीं दिया, यदि जरूरत हुई तो उन्हें सुलझा दिया और यदि किसी ने उसे बढ़ाना चाहा तो लोगों ने उसको डाँट दिया। क्यों? क्योंकि वे घटनाएँ ऐसे घरों में हुई थी जिनके पास न सिर्फ लक्ष्मी, बल्कि दुर्गा जैसे और लाठी भी। लेकिन सरजू भैया ने तो लोगों के लिए यह हालत कर रखी

है। न वह किसी पर धन का धौंस जमा डंडे से डरा सकते है। फिर , क्यों न उन्हें तड़पाया जाए? मैंने उन्हें आश्वासन दिया,उन्हें धैर्य हुआ, वह चले गए, लेकिन रात-भर लोगों की इस कृतघ्नता ने मुझे चैन से न सोने दिया।

सुधुआपन से ठगे जाने की एक कहानी। बहुत दिन हुए, मैं किसी जरूरत में था और कुछ रुपये के लिए परेशान था। सरजू भैया के पास कुछ रुपये थे। मेरी बेचैनी वह कैसे देखते? वह रुपये ले आए। मैंने खर्च कर दिया, लेकिन आज तक दे नहीं सका। रुपये तो आए, लेकिन एक आया, दो का खर्च लेकर । सरजू भैया माँगने का हाल क्या जानें? मैं भी समझता रहा, उनके रुपये कहाँ जाते है, जरूरत होगी, माँगेंगे , दे दूँगा। लेकिन , अभी उस दिन जो बात उन्होंने सुनाई,मैं हक्का-बक्का रह गया।

इस बीच में उन्हें रुपये की जरूरत हुई, लेकिन संकोचवश मुझसे नहीं माँगा। एक सूदखोर महाजन के पास गए, जो पहले उन्हीं से कर्ज खाता था, लेकिन तरह-तरह के कारनामों से अब धन्ना सेठ बन चुका है। उसने उन्हें रुपये दे दिए। लेकिन, जब चलने लगे, कहा- ''आपके पास से रुपये जाएँगे कहाँ, लेकिन कोई सबूत तो चाहिए ही''। ''क्या सबूत? मै तैयार हूँ''-सरजू भैया रुपये बाँध चुके थे, न उनसे खोल कर लौटाया जा सकता था और न वह उसकी माँग को नामंजूर कर सकते थे। नहीं, कुछ नहीं कागज पर सिर्फ निशान बना दीजिए, आपसे बाजाब्ता हैंडनोट क्या कराया जाए?'' सरजू भैया ने बमभोला की तरह कजरौटे से अँगूठा बोर कर कागज पर चिपका दिया और चले आए,मानो, किसी आधुनिक एंटोनियो ने किसी कलजुगी शाइलौक के हाथ में अपने को गिरवी कर दिया। अब वह कहता है-''जल्द रूपए दे दो, नहीं तो नालिश कर दूँगा। और नालिश कितने की करेगा, कौन ठिकाना''-सरजू भैया बेचारगी में बोल रहे थे और मैं उनका मुँह आश्चर्य से देख रहा था। ''आपने ऐसी गलती क्यों कर दी'' ? लेकिन इसके अलावा, इसका जवाब वह क्या दे सकते थे कि क्या करूँ रुपये बाँध चुका था।

अभ्यास

1. सरजू भैया के व्यक्तित्व का संक्षिप्त परिचय लिखिए।
2. सरजू भैया क्या व्यवसाय करते थे? वे अपने व्यवसाय में सफल क्यों नहीं हो सके?
3. सूदखोर किस प्रकार दूसरों का शोषण करते हैं? संक्षेप में लिखिए।
4. 'सादगी,सरल स्वभाव और सहज भोलापन ग्रामीणों की विशेषता है।' सरजू भैया पाठ के आधार पर स्पष्ट कीजिए।
5. 'दूसरों की सहायता करना,सरजू भैया का स्वभाव था'। इस संदर्भ में बताइए कि सरजू भैया किस प्रकार दूसरों की सहायता करते थे।
6. सरजू भैया को सूदखोर ने किस प्रकार ठग लिया था? संक्षेप में लिखिए।

योग्यता विस्तार

1. इस रेखाचित्र का हिन्दी नाट्य रूपान्तर करके कक्षा में इसका अभिनय कीजिए।
2. ग्रामीण ऋणग्रस्तता के कारणों की एक सूची बनाइए।
3. ग्रामीण संस्कृति पर अपने विचार लिखिए। अथवा 'ग्राम्य जीवन' पर एक कविता लिखिए।
4. एंटोनियो, शाइलाक शेक्यपियर के प्रसिद्ध नाटक 'द मर्चेन्ट ऑफ बेनिस' के पात्र हैं। नाटक पढ़कर इसका हिन्दी रूपान्तरण लिखिए।

अध्याय
8

काठमांडू दर्शन

-डॉ. नगेन्द्र

दिल्ली से नेपाल की यात्रा मुश्किल से तीन घंटे की है और वह भी फॉकर फ्रेंडशिप विमान से फिर भी विदेश तो विदेश ही है अत: मेरे परिवार और अन्तरंग वृत्त में थोड़ी सी हलचल पैदा हो गई और हल्की-सी उत्तेजना मेरे मन में भी थी। कलकत्ता, मुम्बई, मद्रास, मैसूर, त्रिवेन्द्रम, कश्मीर आदि की यात्रा मेरे लिए एक सामान्य घटना बन चुकी है। हवाई-यात्रा का भी कोई आकर्षण नहीं रह गया, क्योंकि अधिक व्यस्तता के कारण अब मैं प्राय: विमान से ही यात्रा करता हूँ। पर नेपाल के साथ विदेश की धारणा संलग्न होने के कारण यह थोड़ी सी उत्तेजना अस्वाभाविक नहीं थी। मेरे परिजन नेपाल में अतिशय शीत की कल्पना कर, गर्म कपड़ो की विशेष व्यवस्था करने लगे।और कपड़े तो ठीक ही थे, पर मेरे ओवरकोटके विरुद्ध सभी ने एकमत होकर यह फैसला दिया कि यह विदेश में ले जाने लायक नहीं है।कोट पुराना जरूर था और मैं उसे बदलने का विचार भी कर रहा था, पर इतनी जल्दी दूसरे कोट के लिए भाग-दौड़ करने के लिए मैं तैयार नहीं था। तब यह निश्चय किया गया कि मेरा पुराना कोट ले जाकर उसी के नाप का दूसरा कोट खरीद लिया जाए। मैंने इस प्रस्ताव का प्रतिवाद करते हुए कहा कि जहाँ मैं जा रहा हूँ वहाँ के लिए मेरा यह कोट बहुत बुरा नहीं रहेगा और अपने देश में तो अब सर्दी बीत ही चुकी है, इसलिए अगले वर्ष सुविधा से अच्छा-सा ओवर कोट बनवा लिया जाएगा। यद्पि बहुमत अब भी इसके लिए तैयार नहीं था,परन्तु समय के अभाव के कारण नया ओवरकोट नहीं आ सका। नेपाल यात्रा के लिए पासपोर्ट आदि का बंधन नहीं है और न स्वास्थ्य-संबंधी प्रमाण-पत्र ही आवश्यक होता है। विदेश मंत्रालय के किसी उच्च अधिकारी के परिचय-पत्र से काम चल जाता है। भारत नेपाल के नैकट्य और पारस्परिक सद्भाव-सहयोग के कारण इस प्रकार की सुविधाएँ दोनों देश के नागरिकों को प्राप्त हैं। लेकिन सीमा शुल्क (कस्टम्स) विभाग उतना ही सतर्क है; उसकी ओर से बाकायदा तलाशी ली जाती है और इसके बाद फिर यात्री को बाहर आने जाने की अनुमति नहीं मिलती। विमान के चलने में कुछ विलम्ब होने के कारण इसमें मेरे लिए कठिनाई हो सकती थी, पर पुलिस के एक अधिकारी के सौजन्य से, जो मेरे पूर्व-छात्र थे, यह बाधा दूर हो गई और बच्चों को मेरे पास आने-जाने की सुविधा मिल गई।

अपराह्न में कोई 11.30 बजे के आसपास फॉकर की उड़ान शुरू हुई और घंटे-डेढ़ घंटे में हम लोग गोरखपुर की सीमा पारकर हिमालय की तराई में पहुँच गए। जहाँ से परिदृश्य बदलने लगा। नीचे सघन वृक्ष-राजि से मंडित विस्तीर्ण कान्तार था, लगता था जैसे श्यामल हरीतिमा का समुद्र हिलोरें ले रहा हो। मैंने घने जंगल का वर्णन तो पढ़ा था, कुछ मामूली जंगल देखे भी थे परन्तु निविड़ कान्तार का ऐसा विस्तार जीवन में पहली बार देखा था। इतने में ही हिमालय की श्रेणियाँ दृष्टि पथ में आने लगीं। नेपाल-यात्राा का मेरा सबसे प्रबल आकर्षण था हिमालय, नगाधिराज हिमालय जिसके साथ भारत की असंख्य पुराकथाएँ और उदात्त कल्पनाएँ लिपटी हुई हैं। कालिदास, प्रसाद, पन्त और दिनकर के अनेक काव्य-बिम्ब मेरी चेतना में अनायास ही उद्बुद्ध होने लगे। कालिदास ने पृथ्वी के मानदण्ड के रूप में उसकी विराट् कल्पना की है। भगवान शंकर के संबंध में हिमालय के अनेक प्रसंग कालिदास की आनंद-कल्पना के सहज अंग बन गए थे और कवि की भक्ति शत-शत बिम्बों के फूल निरंतर उसके प्रति अर्पित करती रही। प्रसाद ने हिमालय के उस आदि रूप का चित्रण किया है जो प्रलय के उपरांत सर्वप्रथम आविर्भूत हुआ था। उत्तंग शिखरों से मंडित हिमालय का वह दिगन्तव्यापी कलेवर ऐसा लगता था मानो अभी उसकी प्रलय-समाधि भंग नहीं हुई थी- और प्रलय के समुद्र से उन्मग्न पृथ्वी पूरी शक्ति के साथ उसे पकड़े हुए थी जिससे कि कहीं फिर न डूब जाए। पन्त के प्रकृति काव्य में जिसके अनेक भव्य चित्र अंकित है, वही हिमालय मेरे सामने साक्षात् खड़ा था। शुभ्र-शांति में समाधिस्थ,

शाश्वत सौंदर्य के प्रतीक उस पुंजीभूत आकार को देखकर कवि पंत की कल्पना के समान मेरी कल्पना भी महाश्चर्य में डूब गई और 'कुमार संभव' के उदात्त-कोमल प्रसंग चलाचित्र के समान मेरे मन में घूमने लगे। यहीं किसी निभृत गुफा मे उमा ने शिव का वरण करने के लिए कठोर तपस्या की होगी- यहीं निकटवर्ती कैलाश के शिखर पर त्रिनेत्र की अग्नि शिखाओं से कामदेव भस्म हुआ होगा। इतने ही में मुझे अपने देश के वर्तमान सीमा संकट का स्मरण हो आया और दिनकर की ओजस्वी वाणी मेरे कानों में गूँजने लगी-

'जिसके द्वारों पर खड़ा क्रान्त
सीमापति ! तूने की पुकार-
पद दलित इसे करना पीछे
पहले ले मेरा सिर उतार।'

तभी न जाने कैसे मुझे अपने नाम-परिवर्तन का प्रसंग याद आ गया। नागों के उपासक नगाइच वंश में जन्म होने के कारण पितामह ने मेरा नाम नागेन्द्र रखा था। यह नाम दसवीं कक्षा तक यथावत् चलता रहा, पर दसवीं कक्षा में एक अध्यापक अपने-आप ही नगेंद्र कह कर मेरा नाम पुकारने लगे क्योंकि अंग्रेजी में नागेंद्र और नगेंद्र की वर्तनी एक ही है। प्राय: उसी समय साहित्य के प्रति मेरी रुचि जगने लगी थी और शब्द-अर्थ के सौंदर्य के संस्कार धीरे-धीरे व्यक्त होने लगे थे। मैंने अनुभव किया कि नागेंद्र की अपेक्षा नगेंद्र नाम शब्द और अर्थ दोनों की दृष्टि से अधिक सुन्दर है और मैंने उसी का प्रयोग करना आरंभ कर दिया। आत्मचिन्तन के एकांत क्षणों में मेरी बाल-कल्पना हिमालय के जिस विराट बिम्ब को अपनी चेतना में प्राय: बाँधने का प्रयत्न करती थी, वहीं आज अपने अपार ऐश्वर्य के साथ मेरे सामने विद्यमान था और उस विराट-भाव को आत्म सात करता हुआ मैं एक अपूर्व आह्लाद का अनुभव कर रहा था। थोड़ी देर में बादल छँट जाने से धूप एक-साथ खिल उठी। मैंने खिड़की से झाँक कर देखा तो नीचे पर्वत के विशाल स्कन्ध पर तैरती हुई हमारे विमान की छाया ऐसी लग रही थी जैसे किसी देव-मंदिर के रजत-शिखर पर छोटा-सा पतंगा मँडरा रहा हो। और, मैं सोचने लगा कि कल्पना से वंचित होकर यथार्थ कितना क्षुद्र बन जाता है।

अब तक हम नेपाल राज्य में प्रवेश कर चुके थे; सामने की पर्वत श्रेणी पार करते ही विमान काठमांडू घाटी में उतरने लगा। परिचारिका ने हिन्दी में रटा हुआ वाक्य दोहराया और मैं कुर्सी-पेटी बाँध कर हवाई अड्डे पर उतरने के लिए तैयार हो गया। काठमांडू का हवाई अड्डा मध्यम श्रेणी का है। जिस दिन मैं लौट रहा था- उसी दिन उसके इतिहास में पहली बार एक बड़ा जैट विमान उतरा था-यानी फॉकर और डकोटा आदि के ही उतरने की व्यवस्था सामान्यत: वहाँ थी। परन्तु जिसकी सीमा पर हिमालय की श्रेणियाँ अर्धवृत्त बनाकर खड़ी हों, उसके परिदृश्य में विराट तत्व का समावेश तो अपने-आप ही हो जाता है। हिमालय के शिखरों की पृष्ठभूमि में उड़ते हुए विमान अपने सामान्य आकार से भी छोटे दिखाई पड़ते थे। उन्हें देखकर मुझे पुराणों में वर्णित देव-गंधर्व आदि के विमानों का स्मरण हो आया वे भी यहाँ इसी तरह उड़ते रहते होंगे। यान से नीचे आते ही कुछ दूर चल कर मेरे आतिथेय मिल गए और सामान लेकर मैं उनके साथ चल दिया। विश्वविद्यालय की ओर से मेरे ठहरने की व्यवस्था एक होटल में की गई थी किन्तु मेरे मित्र ने वह प्रस्ताव रद्द कर अपने घर ही ले चलने का आग्रह किया। नेपाल को पर्यटकों का स्वर्ग कहा जाता है- प्रकृति और कला का ऐसा अपूर्व वैभव अन्यत्र दुर्लभ है। मैंने अपने मित्र से कहा कि मैं दो दिन के लिए ही आया हूँ तो वे बोले कि दो दिन में तो आप नेपाल के दर्शनीय स्थानों की तालिका भी नहीं बना सकेंगे। मैंने उत्तर दिया कि कुछ चर्म-चक्षुओं से देख लेंगे और शेष को कल्पना की आँखों से!

मित्र के घर पहुँचकर चाय पीते-पीते शाम हो गई, इसलिए उस दिन सिर्फ शहर में ही घूमने का कार्यक्रम बनाया। काठमांडू एक रंगीन पहाड़ी शहर है जिसमें नए और पुराने का अनमेल मिश्रण है। शहर का नया भाग,जहाँ दूतावास आदि है,आधुनिक ढंग का बना हुआ है- पाश्चात्य उपयोगी वास्तुकला की इमारतें हैं और पक्की साफ सड़क

हैं।पुराने हिस्से में स्थानीय नागरिकों के मकान हैं जिनमें लकड़ी और मिट्टी का प्रयोग अधिक और पत्थर का कम है। संपन्न व्यक्तियों के विशेष कर राणा-परिवार के सदस्यों के भवन सामन्तीय ढंग के हैं,उनके चारों और प्राचीर हैं ओर भीतर पहाड़ी शैली के गढ़ीनुमा मकान हैं जिसमें एक प्रकार के अनगढ़ पौरुष का आभास मिलता है। राजमहल में नयी और पुरानी वास्तु-शैली का मिश्रण है, बाहर की प्राचीर जहाँ पुरानी ढंग की है, वहाँ भीतर के भवन नये ढंग के नये साज सामान से लैस हैं। सरकारी इमारतें नये ढंग की हैं,पर प्रधान मंत्री तथा मंत्रिमंडल के अन्य सदस्य वहाँ न रहकर अपने खानदानी मकानों में ही रहते हैं। शहर का पुराना भाग बहुत साफ नहीं, वातावरण वहाँ का उत्तर प्रदेश के उत्तर-पूर्वी शहरों का-सा है। हाँ, बाजार में काफी वैचित्र्य और रंगीनी हैं, दूर-पूर्व एशिया, चीन , भारत और अब अमरीका का माल विदेशी कीमत पर वहाँ मिलता है, नेपाल की रंग- बिरंगी चीजें बाजार के आकर्षण को और भी बढ़ा देती हैं। खाने-पीने की चीजें काफी महँगी हैं। नगर के विशेष स्थानों पर चौक और चौराहों पर- महाराजाधिराज महेंद्र व महारानी के चित्र लगे हुए हैं,जिनके नीचे संस्कृत निष्ठ नेपाली भाषा में,देवनागर अक्षरों में, हिन्दू राजभक्ति परम्परा के अनुकूल, राजदम्पत्ति की मंगल-प्रशस्तियाँ अंकित हैं, नगर भर में, मार्गों पर, हाटों में, प्रशासनिक भवनों पर सर्वत्र नेपाली भाषा का ही प्रयोग है-कहीं पर 'अन्तरराष्ट्रीय भाषा' का आश्रय नहीं लिया गया।

दूसरा दिन हमने काठमांडू के विशेष दर्शनीय स्थानों के निरीक्षण के लिए रखा था। अत: सबेरे दस बजे के लगभग हम लोग घर से चल दिए। समयाभाव के कारण केवल दो-तीन प्रमुख स्थानों का ही कार्यक्रम बन सका- नगर में स्थित काष्ठ मण्डप, स्वयंभूनाथ और पाटन का कृष्ण मंदिर। काष्ठ मण्डप शहर के मध्यभाग में अवस्थित है। इसका रूपाकार पगोडा के समान है संपूर्ण मण्डप एक ही महावृक्ष के काष्ठ से निर्मित है। आरंभ में यह यात्रियों का विश्राम गृह था, पर धीरे धीरे इसमें देवभावना का समावेश होता गया और यह एक प्रकार का देवस्थान बन गया। काठमांडू काष्ठ मण्डप का ही तद्भव रूप है। कला की दृष्टि से कोई विशेष शिल्प सौदर्य इसमें नहीं है, पर सब मिल कर यह एक विचित्र वस्तु है। वहाँ से हम पाटन का कृष्णमंदिर देखने गये जो बागमती नदी के पार नगर से कुछ मील दूर पर है। पाटन एक छोटा सा उपनगर है जिसमें हर जगह छोटे-छोटे मंदिर या मूर्ति गृह बने हुए हैं। यह कृष्ण मंदिर प्राय: दो हजार वर्ष पुराना है और इसकी विशेषता यह है कि कहीं भी इसमें चूने का प्रयोग नहीं किया गया। वास्तुकला का यह अद्भुत चमत्कार है, चूने के बिना भी यह इतना मजबूत बना हुआ है कि भूकम्पों का इस पर अब तक कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मूर्तिकला और वास्तुकला का सर्वश्रेष्ठ निदर्शन है- स्वयंभूनाथ का मंदिर, जो एक पर्वतखंड के ऊपर विराट् भूमिका पर स्थित है। इस मंदिर का प्रमुख आकर्षण है- स्वर्ण पत्र से मंडित भगवान बुद्ध की विशाल प्रतिमा। परन्तु स्तूप का स्वरूप भी अपने-आप में कम आकर्षक नहीं है, जिसमें चारों ओर दो-दो आँखें लगी हुई है। इस स्तूप को देखकर ऐसा लगता है मानो वह एक चिर सजग प्रहरी की भाँति चतुर्दिक् दृक्पात करता हुआ नगर की रक्षा कर रहा हो।

नेपाल शैव, शाक्त और बौद्ध धर्मों का केंद्र रहा है। इस समय वह विश्व में एक मात्र हिन्दू राज्य है जो न तो भारत की तरह धर्म निरपेक्ष है और न पाकिस्तान की तरह धर्म प्रतिबद्ध। वह इस बात का प्रमाण है कि हिन्दू धर्म को उसके सहज उदार रूप में स्वीकार कर लेने के बाद धर्म निरपेक्षता उतनी अनिवार्य नहीं रहतीं। इसीलिए शताब्दियों से वह एक ओर भगवान् पशुपतिनाथ और दूसरी ओर तथागत बुद्ध के वरदानों का युगपत् उपभोग करता रहा है। अनेक हिन्दू प्रथाएँ ,जो भारत में विलुप्त हो गई है, आज भी वहाँ की व्यावहारिक संस्कृति का अंग है। नेपाल और भारत के सम्बन्ध अत्यन्त आत्मीय तथा सौहार्द्रपूर्ण हैं- संस्कृति और धर्म की समानता चिरकाल से दोनों राष्ट्रों को स्नेह बंधन में बाँधे हुए है।

रात्रि में भगवान् पशुपतिनाथ के दर्शन का कार्यक्रम बना। उस दिन शिवरात्रि थी और मार्च की 9 तारीख,यानी मेरा जन्मदिवस भी संयोग से उसी दिन था। भक्तों का अपार समुदाय सभी दिशाओं से उमड़ रहा था-मंदिर के चारों ओर दूर-दूर तक यात्रियों के तम्बू और दुकानें लगी हुई थी। मेरे आतिथेय मित्र ने ,जो वहाँ इंजीनियर थे, मंदिर के निकट तक गाड़ी ले जानेका प्रबंध कर लिया था,जिससे हमें अधिक पैदल न चलना पड़े। मंदिर के प्रांगण में नंगे पाँव प्रवेश करना

था और कीचड़ होने के कारण मोजे पहनने की सुविधा नहीं थी। सामान्यत: मेरे लिए जाड़े की रात में यह सब कष्ट साध्य था, परन्तु और कोई गति भी नहीं थी। एक श्रद्धालु मित्र ने कहा- भगवान् पशुपतिनाथ के मंदिर में क्या डरना ? भीड़ में धक्का-मुक्की करते हुए अंत में हम देव-विग्रह के सामने पहुँच गए और प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार भगवान को प्रणाम कर क्षण भर में आगे बढ़ गया, क्योंकि इससे अधिक तो उस जन-प्रवाह में रुकने की सम्भावना ही नहीं थी।

10 मार्च को निर्वाचन-समिति की बैठक थी और उसी दिन पूर्वाह्न में मुझे नेपाल में भारतीय राजदूत श्री श्रीमन्नारायण से मिलना भी था। वैसे भी अपने देश के राजदूत से मिलना वैदेशिक शिष्टाचार का एक अंग है और फिर बंधुवर श्रीमन जी से तो मेरे काफी पुराने स्नेह सम्बन्ध थे। मध्याह्न का भोजन उनके यहाँ करने के बाद मैं तुरंत ही विश्वविद्यालय की नयी इमारत की ओर चल दिया। यह इमारत काठमांडू से कई मील दूर कीर्तिपुर नामक उपनगर में बन रही है। तब तक केवल इसका प्रशासनिक खंड व दीक्षांत भवन बन चुके थे और विज्ञान-विभाग की इमारतें बन रही थीं। विश्वविद्यालय के प्रवेशद्वार पर नागर अक्षरों में त्रिभुवन विश्वविद्यालय लिखा हुआ है और दीर्घा के भीतर सामने की दीवार पर नेपाली भाषा में उसकी स्थापना का संक्षिप्त इतिवृत दिया हुआ है विश्वविद्यालय परिदृश्य अत्यन्त भव्य हैं वह विशाल भूमिखंड, जिस पर विश्वविद्यालय स्थित है, पर्वत माला से घिरा हुआ अर्धचन्द्राकार है। निर्माण कार्य पूरा होने पर त्रिभुवन विश्वविद्यालय का परिवेश प्राकृतिक और मानवीय कला के संयोग से एक अपूर्व गरिमा से मण्डित हो जाएगा। विश्वविद्यालय की स्थापना सन 1960 में हुई थी; इसके अन्तर्गत कला, सामाजिक विज्ञान और भौतिक विज्ञान के प्राय: सभी प्रमुख विभाग और देश के विभिन्न भागों में स्थापित 35-36 स्नातक- विद्यालय है। विभिन्न विषयों के लिए नेपाल के सुयोग्य नागरिकों के अतिरिक्त,भारत और अमरीका आदि के विशेषज्ञ विद्वानों की नियुक्ति की जाती है। भारत सहयोग-संस्थान की ओर से 20-25 भारतीय प्राध्यापक वहाँ भिन्न-भिन्न विभागों में कार्य कर रहे हैं। हिन्दी विभाग में एक आचार्य प्रोफेसर , एक उपाचार्य (रीडर) तथा कई प्राध्यापक है। नेपाली के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण हिन्दी और संस्कृत में वहाँ के छात्रों की विशेष रुचि है। कुलपति महोदय के अनुरोध पर मैंने पाठ्यक्रम और शोध-व्यवस्था आदि के विषय में हिन्दी-विभाग के सहयोगी-बंधुओं से विचार-विनिमय किया और तुलनात्मक अनुसंधान पर विशेष बल देने का परामर्श किया। नेपाल के प्राचीन ग्रंथागारों में अपार सामग्री भरी पड़ी है। वह प्राय: संस्कृत और पालि भाषा में है- पर मैथिली हिन्दी के ग्रंथों का भी संग्रह काफी है। उनका सम्पादन और प्रकाशन निश्चय ही उपयोगी होगा। निर्वाचन-समिति की कार्यवाही में लगभग दो घंटे लगे।

अगले दिन 11 मार्च 1967 को मध्याह्न में मुझे नेपाल-विमान-सेवा के हवाई जहाज से दिल्ली लौटना था। अत: 10.30 बजे के आसपास हमलोग हवाई अड्डे के लिए चल दिये। उस दिन यूरोप से कोई विशेष अतिथि काठमांडू आ रहे थे, अत: हवाई-अड्डे के मार्ग जल्दी ही बंद हो गये थे। परन्तु मित्र के प्रभाव से हमें किसी न किसी प्रकार रास्ता मिल गया और हम समय पर मुख्य मार्ग से कुछ बचकर हवाई अड्डे पर आ गये। वहाँ मालूम हुआ कि हमारे विमान में दो-तीन घंटे का विलम्ब है। इतना समय काटने में थोड़ी असुविधा हुई खासकर मेरे मित्रों को, जो मेरे बार-बार आग्रह करने पर भी वहाँ से नहीं गये। आखिर हवाई जहाज पहुँच ही गया और नियत समय पर मैंने अपने आतिथेय बंधुओं से विदा ली, जिनके कारण उस अपरिचित प्रदेश में मुझे सब प्रकार की सुख-सुविधा रही थी। वह विमान भी फॉकर फ्रेंडशिप था- अन्तर केवल इतना ही था कि भीतर की साजसज्जा व खान-पान में थोड़ा-सा नेपाली स्पर्श था और सूचनाएँ मुख्यत: नेपाली भाषा में दी जाती थी, बाद में विदेशी यात्रियों और भारतीयों के लिए अंग्रेजी में उनकी आवृत्ति कर दी जाती थी। आते समय अन्तरिक्ष में कुहरा छाया हुआ था,इसलिए पवर्तमालाएँ साफ दिखाई नहीं देती थी। पर उस दृश्य का भी अपना आकर्षण था- कुहरे के झीने आवरण में हिम-धवल शिखरों की शोभा कुछ और ही थी। तीन घंटे में विमान दिल्ली के ऊपर आ गया और दस मिनट के भीतर पालम पर उतर गया। वहाँ मुझे लेने के लिए बच्चे व परिवार के व्यक्ति पहले से खड़े हुए थे। जाते समय बच्चों को मैं समझा गया था कि नेपाल से कोई चीज लाना सम्भव नहीं है, अत: नई दिल्ली में जनपथ के बाजार से उनकी फरमाइश पूरी करनी पड़ी।

अभ्यास

1. हिमालय के विषय में लेखक के विचार लिखिए।
2. नेपाल में लेखक के ठहरने की क्या व्यवस्था थी? संक्षेप में लिखिए।
3. काठमांडू भ्रमण के बाद लेखक के अनुभव अपने शब्दों में लिखिए।
4. भगवान पशुपतिनाथ के दर्शन के समय लेखक ने क्या-क्या देखा? लिखिए।
5. नेपाल के त्रिभुवन विश्वविद्यालय का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।

योग्यता विस्तार

1. आपने किसी प्राकृतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक स्थल की यात्रा की हो तो उसका वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
2. किसी दर्शनीय स्थल के भ्रमण हेतु एक योजना तैयार कीजिए।
3. अपने आसपास के दर्शनीय स्थानों की सूची बनाइए। दर्शनीय स्थलों के चित्रों का संकलन कीजिए।

***

अध्याय
9

इत्यादि

यशोदानन्दन अखोरी

'शब्द-समाज' मे मेरा सम्मान कुछ कम नहीं है। मेरा इतना आदर है कि वक्ता और लेखक लोग मुझे जबरदस्ती घसीट ले जाते हैं। दिन भर में , मेरे पास न जाने कितने बुलावे आते हैं। सभा-सोसायटियों में जाते-जाते मुझे नींद भर सोने की छुट्टी नही मिलती। यदि मैं बिना बुलाये भी कहीं जा पहुँचता हूँ तो भी सम्मान के साथ स्थान पाता हूँ। सच पूछिए तो ''शब्द समाज'' में यदि मैं, 'इत्यादि' न रहता, तो लेखकों और वक्ताओं की न जाने क्या दुर्दशा होती। पर हाँ! इतना सम्मान पाने पर भी किसी ने आज तक मेरे जीवन की कहानी नहीं कही। संसार में जो जरा भी काम करता है उसके लिए लेखक लोग खूब नमक-मिर्च लगा कर पोथे के पोथे रंग डालते हैं; पर मेरे लिए एक शब्द भी किसी की लेखनी से आज तक नहीं निकला। इसमें एक भेद है।

यदि लेखक लोग सर्व-साधारण पर मेरे गुण प्रकाश करते तो उनकी कोई योग्यता की कलई जरूर खुल जाती; क्योंकि उनकी शब्द- दरिद्रता की दशा में मैं उनका एक मात्र अवलंब हूँ। अच्छा ,तो आज मैं चारों ओर से निराश होकर आप ही अपनी कहानी कहने और गुणावली गाने बैठा हूँ। आप मुझे, ''अपने मुँह मियाँ मिट्ठू'' बनने का दोष न लगावें। मैं इसके लिए क्षमा चाहता हूँ।

अपने जन्म का सन्, संवत, दिन मुझे कुछ भी याद नहीं। याद है इतना ही कि जिस समय 'शब्द का महा अकाल' पड़ा था उसी समय मेरा जन्म हुआ था। मेरी माता का नाम 'इति' और पिता का 'आदि' है। मेरी माता अविकृत 'अव्यय' घराने की है। मेरे लिए यह थोड़े गौरव की बात नहीं है; क्योंकि भगवान फणींद्र की कृपा से 'अव्यय' वंशवाले, प्रतापी महाराज 'प्रत्यय' के सभी अधीन नहीं हुए। वे सदा स्वाधीनता से विचरते आए हैं।

मैं जब लड़का था तब मेरे माँ- बाप ने एक ज्योतिषी से मेरे अदृष्ट का फल पूछा था। उन्होंने कहा था कि यह लड़का विख्यात और परोपकारी होगा; अपने समाज में यह सबका प्यारा बनेगा; पर दोष है तो बस इतना ही कि यह कुँवारा ही रहेगा। विवाह न होने से इसके बाल बच्चे न होगे। यह सुनकर माँ- बाप के मन में पहले तो थोड़ा दुख हुआ; पर क्या किया जाय? होनहार ही यह था। इसलिए सोच छोड़कर उन्हें संतोष करना पड़ा। उन दोनों ने , अपना नाम चिरस्मरणीय करने के लिए (मुझसे ही उनके वंश की इतिश्री थी) मेरा नाम कुछ और नहीं रखा। अपने ही नामों को मिलाकर वे मुझे पुकारने लगे। इससे मैं 'इत्यादि' कहलाया।

पुराने जमाने में मेरा इतना नाम नहीं था। कारण , यह कि एक तो लड़कपन में थोड़े लोगों से मेरी जान पहिचान थी; दूसरे उस समय बुद्धिमानों के बुद्धि भण्डार में शब्दों की दरिद्रता भी न थी। पर जैसे-जैसे शब्द-दारिद्रय बढ़ता गया, वैसे-वैसे, मेरा सम्मान भी बढ़ता गया। आजकल की मत पूछिए। आजकल मैं ही मैं हूँ। मेरे समान सम्मान वाला इस समय मेरे समाज में कदाचित विरला ही कोई ठहरेगा। आदर की मात्रा के साथ मेरे नाम की संख्या भी बढ़चली है। आज कल मेरे अनेक नाम है- भिन्न-भिन्न भाषाओं के 'शब्द समाज' में मेरा नाम भी भिन्न-भिन्न है। मेरा पहनावा भी भिन्न-भिन्न है- 'जैसा देस वैसा ही भेस'बनाकर मैं सर्वत्र विचरता हूँ। आप भी जानते ही होंगे कि सर्वेश्वर ने हमें 'शब्दों' को सर्वव्यापक बनाया है। इसी से मैं, एक ही समय, अनेक ठौर काम करता हूँ। इस समय विलायत की पार्लियामेंट महासभा में डटा हूँ, और इसी घड़ी भारत की पंडित मंडली में भी विराजमान हूँ। जहाँ देखिए वहीं परोपकार के लिये उपस्थित हूँ।

मुझ में यह एक भारी गुण है, कि क्या राजा,क्या रंक, क्या पंडित, क्या मूर्ख, किसी के घर जाने आने में मैं संकोच नहीं करता; और अपनी मानहानि नहीं समझता। अन्य 'शब्दों' में यह गुण नहीं। वे बुलाने पर भी कहीं जाने-आने में बड़ा गर्व करते हैं; बहुत आदर चाहते हैं। जाने पर सम्मान का स्थान न पाने पर रूठ कर उठ भागते हैं। मुझमें यह बात नहीं। इसी से मैं सबका प्यारा हूँ।

परोपकार और दूसरे की मान-रक्षा तो मानो मेरा धंधा ही है। यह किए बिना मुझे एक पल भी कल नहीं पड़ती। संसार में ऐसा कौन है जिसके अवसर पड़ने पर मैं काम नहीं आता? निर्धन लोग जैसे भाड़े पर कपड़ा लत्ता पहनकर बड़े-बड़े समाजों में बड़ाई पाते हैं, कोई उन्हें निर्धन नहीं समझता, वैसे ही मैं भी छोटे-छोटे वक्ताओं और लेखकों की दरिद्रता झटपट दूर कर देता हूँ। अब दो-एक दृष्टान्त लीजिए।

वक्ता महाशय वक्तृता देने को उठ खड़े हुए हैं। अपनी पंडिताई दिखाने के लिये सब शास्त्रों की बात थोड़ी बहुत कहनी चाहिए। पर शास्त्र का जानना तो अलग रहा, उन्हें किसी शास्त्र का पन्ना भी उलटने का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। इधर-उधर से सुन कर दो-एक शास्त्रों और शास्त्रकारों का नाम भर जान लिया है। कहने को तो खड़े हुए है, पर कहें क्या? अब लगे चिन्ता के समुद्र में डूबने उतरने; और मुँह पर रूमाल लिये खाँसते खूँसते इधर-उधर ताकते। दो-चार बूँद पानी भी उनके मुखमंडल पर झलकने लगा। जो मुख कमल पहले उत्साह सूर्य की किरणों से खिल उठा था,अब ग्लानि और संकोच का पाला पड़ने से मुरझा गया। उनकी ऐसी दशा देख मेरा हृदय दया से उमड़ आया। उस समय मैं बिना बुलाए उनकी सहायता के लिए जा खड़ा हुआ; और मैंने उनके कानों में चुपके से कहा- ''महाशय,कुछ परवा नहीं आप की मदद के लिये मैं हूँ। आपके जी में जो आए आरंभ कीजिए; फिर तो मैं सब कुछ निबाह लूँगा।'' मेरे ढाढ़स बँधाने पर बेचारे वक्ताजी के जी में जी आया। उनका मन ज्यों-का-त्यों हरा भरा हो उठा। थोड़ी देर के लिए जो उनके आकाशमंडल में चिन्ता चिह्न का बादल देख पड़ता था वह मेरे ढाढ़स के झकोरे से एक बारगी फट गया; और उत्साह का सूर्य फिर निकल आया। अब लगे वे यों वक्तृता झाड़ने- ''महाशयो'', मनु इत्यादि धर्मशास्त्रकार, व्यास इत्यादि पुराणकार, कपिल इत्यादि दर्शनकारों ने कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद इत्यादि जिन-जिन दार्शनिक तत्व रत्नों को भारत के भण्डार में भरा है, उन्हें देखकर मैक्समूलर इत्यादि पाश्चात्य पंडित लोग बड़े अचम्भे में आकर चुप हो जाते हैं। इत्यादि-इत्यादि।''

यहाँ इतना कहने की जरूरत नहीं कि वक्ता महाशय धर्मशास्त्रकारों में केवल मनु, पुराणकारों में केवल व्यास, दर्शनकारों में केवल कपिल का नाम जानते हैं; और उन्होंने कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद का नाम भर सुन लिया है। पर देखिए मैंने उनकी दरिद्रता दूर कर उन्हें ऊपर से कैसा पहनावा पहनाया कि भीतर के फटे पुराने और मैले चीथड़े को किसी ने नहीं देखा।

और सुनिए - किसी समालोचक महाशय का किसी ग्रंथकार के साथ बहुत दिनों से मनमुटाव चला आता था। जब ग्रंथकार की कोई पुस्तक समालोचना के लिए समालोचक साहब के आगे आई तब वे बड़े प्रसन्न हुए, क्योंकि यह दाँव तो बहुत दिनों से ढूँढ रहे थे। पुस्तक को बहुत कुछ ध्यान देकर, उलट कर , उन्होंने देखा। कहीं किसी प्रकार का विशेष दोष पुस्तक में उन्हें न मिला। दो- एक छापे की भूलें निकलीं। पर इससे तो सर्वसाधारण की तृप्ति नहीं होती। ऐसी दशा में बेचारे समालोचक महाशय के मन में याद आ गया। वे झटपट मेरी शरण आए। फिर क्या है? पौ बारह! उन्होंने उस पुस्तक की यों समालोचना कर डाली- पुस्तक में जितने दोष हैं, उन सभी को दिखाकर , हम ग्रंथकार की अयोग्यता का परिचय देना , तथा अपने पत्र का स्थान भरना और पाठकों का समय खोना नहीं चाहते। पर दो एक साधारण दोष हम दिखा देते हैं; जैसे इत्यादि-इत्यादि।

देखा! समालोचक साहब का इस समय मैंने कितना बड़ा काम किया।यदि यह अवसर उनके हाथ से निकल जाता तो वे अपने मनमुटाव का बदला क्यों कर लेते! यह तो हुई बुरी समालोचना की बात। यदि भली समालोचना का काम पड़े तो मेरे ही सहारे वे बुरी पुस्तकों की भी ऐसी समालोचना कर डालते हैं, कि वह पुस्तक सर्वसाधारण की आँखों में भली भासने लगती है और उसकी माँग चारों ओर से आने लगती है।

कहाँ तक कहूँ। मैं मूर्ख को पंडित बनाता हूँ । जिसे युक्ति नहीं सूझती उसे युक्ति सुझाता हूँ। लेखक को यदि भाव प्रकाश करने की भाषा नहीं जुटती तो भाषा जुटाता हूँ। कवि को जब उपमा नहीं मिलती, उपमा बताता हूँ। सच पूछिए तो मेरे पहुँचते ही अधूरा विषय भी पूरा हो जाता है। बस क्या इतने से मेरी महिमा प्रगट नहीं होती?

अभ्यास

1. इत्यादि शब्द का जन्म कब हुआ था? इसके माता-पिता के विषय में भी जानकारी दीजिए।
2. ज्योतिषियों ने 'इत्यादि' के विषय में क्या भविष्य फल बतलाया था?
3. इत्यादि में बहुत अच्छा गुण क्या है? स्पष्ट कीजिए।
4. कठिनाई के समय 'इत्यादि' शब्द वक्ता की किस प्रकार सहायता करता है?
5. 'भिन्न-भिन्न भाषाओं के शब्द भण्डार में इत्यादि का नाम भिन्न-भिन्न हैं।' उदाहरण देकर समझाइए।

योग्यता विस्तार

1. इत्यादि शब्द की तरह हिन्दी में और कौन-कौन से शब्द अधिक प्रचलित हैं? सूची बनाइए ।
2. आत्मकथा लिखते समय किन बातों का ध्यान रखा जाता है? शिक्षक से चर्चा करके समझिए। अपने मनपंसन्द विषय पर आत्मकथा शैली में लिखिए।
3. 'पुस्तक' की आत्मकथा संक्षिप्त में लिखिए।
4. 'इत्यादि' शब्द की आत्मकथा के माध्यम से शब्द की उत्पत्ति तथा उपयोग के बारे में बताया गया है। आप भी शब्दों की उत्पत्ति तथा उपयोग के बारे में पता करके लिखिए (कम से कम 10 शब्दों की)।

***

अध्याय
10

प्रेरक प्रसंग

आचार्य श्रीराम शर्मा

गरीबों का मसीहा

उफ! यह कलमुँही गरीबी भी कितनी जालिम है! कैसी सिर चढ़ कर बोल रही है इन दिनों, जिसके पीछे पड़ गई , तो फिर उसकी कमर ही तोड़ डालती है। हाय! भूख से कैसे बिलबिलाते रहते हैं उनके बच्चे! और माँ चौबीसों घंटे काम-काम। बच्चों की खातिर मशीन की तरह काम करना भी तो पड़ता है, फिर भी यह शैतान पेट भरने का नाम ही नहीं लेता। पिता कठिन परिश्रम करके भी जब आर्थिक दशा सुधार नहीं पाता, तो लाचार होकर परिस्थितियों से समझौता कर लेता है। समझौता नहीं करे, तो और क्या करें? हे भगवान! तुम्हारी सृष्टि में यह विषमता कब तक चलती रहेगी।

महाकवि निराला इन्हीं विचारों में डूबते-उतरते पैदल चल रहे थे। कई दिनों का उपवास और उस पर पैदल। पैर साथ नहीं दे रहे थे, किन्तु फिर भी वे किसी प्रकार चले जा रहे थे। क्या करते और कोई गुंजाइश भी तो नहीं थी। जेब में एक फूटी कौड़ी तक नहीं थी कि इक्का-तांगा कर लेते। गरीबी में मसीहा को तो गरीब बनकर ही जीना पड़ता है, क्योकि उनकी दरिद्रता उनसे देखी कहाँ जाती? वे स्वयं मौज-मस्ती करें और उनके दूसरे भाई भूखों-नंगों की तरह रहें, ऐसी कल्पना तो उनके स्वप्न में भी नहीं उठती ।

इन्हीं परिस्थितियों में सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' दारागंज से लीडर प्रेस चले आ रहे थे, ताकि प्रेस से रॉयल्टी के कुछ पैसे मिल सके, तो क्षुधा तृप्त हो। प्रेस से रॉयल्टी के 104 रुपये लेकर, इक्के में सवार होकर अपनी मुँह बोली बहन महादेवी के निवास की ओर चल पड़े। इक्का अभी थोड़ी ही दूर चला था कि एक टेर सुनाई दी-बेटा! इस अभागिन भूखी को भी कुछ मिल जाय।

निराला ने इधर-उधर देखा तो ज्ञात हुआ कि पुकार उन्हीं को लक्ष्य करके की गई है, तो इक्का रुकवाया, स्वयं उतरे और सड़क के किनारे बैठी बूढ़ी भिखारिन के पास जा पहुँचे। अंतर में उठती करुणा को रोक न सके, बोले-माँ! हमारे रहते तुम्हें भीख माँगनी पड़े, यह कैसे हो सकता है?

और क्या करूँ बेटा! - बुढ़िया ने अपने क्षीण स्वर में कहा-'हाथ-पैर चलते नहीं। जब तक ठीक रहे तब तक मैंने भी स्वाभिमानवश किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया और पसीने की कमाई से अपने परिवार को पालती रही' पर मैं बेटों को फूटी आँख भी नहीं सुहाती। जिनके लिए मैने अपना खून-पसीना एक किया, आज उन्हीं लोगों ने दूध की मक्खी की तरह निकाल कर फेंक दिया है। पेट पालने के लिए कुछ तो करना ही था, सो इसे विवश होकर अपना लिया। किसी प्रकार यह बूढ़ा पेट भर जाता है।

कवि हृदय तड़प उठा। पूछा -'यदि एक रुपया दे दूँ, तो कब तक भीख नहीं माँगोगी?'

'कल तक'- उत्तर मिला।

'यदि पाँच रुपये दे दूँ तो।'

'पाँच दिन तक भीख नहीं माँगनी पड़ेगी'-बुढ़िया ने जवाब दिया।

कवि ने रॉयल्टी की पूरी राशि एक सौ चार रुपये दे देने की बात कही तो बुढ़िया ने फिर कभी भीख न माँगने और इससे कोई धन्धा कर लेने का संकल्प लिया।

महाकवि सारी राशि बुढ़िया को दे, स्वयं खाली जेब इक्के में बैठकर महादेवी के घर की ओर चल पड़े, जहाँ

किराया भी महादेवी जी ने ही चुकाया। ऐसा था उनका विशाल कवि हृदय। आज भी उनकी आत्मा चीख-चीख कर कह रही है कि मानवता हृदय की विशालता से आती है, भौतिक सम्पन्नता से नहीं ।

आदर्शवादी बिक नहीं सकता

दरवाजे पर खट-खट की आवाज हुई और अन्दर कमरे में नीचे फर्श पर दरी बिछाकर बैठे चौकी पर कागज रखकर लिख रहे गुप्त जी ने छोटे लड़के को आवाज देते हुए कहा-''देखना बेटा । कौन आए हैं?''

छोटे लड़के ने अपने पिता की आवाज सुन दरवाजा खोला और एक सज्जन अन्दर प्रविष्ट हुए। गुप्तजी उन्हें देखकर तुरन्त खड़े हो गए, ''बहुत दिनों बाद दिखाई दिए हो मित्र । कहाँ हो,आजकल क्या कर रहे हो? ''

आगन्तुक सज्जन जो उनके पुराने मित्र थे । उनके इन प्रश्नों के उत्तर तो दे ही रहे थे । साथ ही सोचते जा रहे थे कि 'भारत मित्र' जैसे प्रतिष्ठित अखबार के सम्पादक से मिलने जा रहा हूँ। घर में ठाट-बाट और रौनक नहीं होगी तो कम से कम मध्यवर्गीय परिवार जैसी स्थिति तो होगी ही । पर यहाँ चारों ओर फटेहाली दिखाई पड़ रही थी । 'भारत मित्र' हिन्दी दैनिक के सम्पादक श्रीबालमुकुन्द गुप्त की कमीज जो बहुत ही हल्के और सस्ते कपड़े की सिली हुई थी पीछे दीवार पर खूँटी पर टँगी हुई थी । गुप्त जी मोटी निब वाली सस्ते दामों वाली कलम से लिख रहे थे ।

आगन्तुक सज्जन इन सब वस्तुओं को, घर के वातावरण को बड़ी बारीक नजर से देख रहे थे। इधर-उधर की बातें चल रहीं थीं। सज्जन अपना मन्तव्य कहने ही जा रहे थे कि गुप्त जी का ज्येष्ठ पुत्र कमरे में आया और उसने बाजार से खरीद कर लाई हुई दो कमीजें अपने पिता के सामने रखी।

गुप्त जी ने उससे पूछा-''कमीज तो अच्छी है । कितने की है बेटा। '' ''चार रुपये की।'' ''चार रुपये की?'' गुप्त जी ने बड़े ही विस्मय और आपत्ति जनक स्वर में कहा-''इतनी महँगी क्यों खरीदी? इतने में तो घर के सभी सदस्यों के लिए कपड़े बन सकते हैं''

आगन्तुक सज्जन ने कहा- ''बच्चे ही तो है गुप्त जी।'' यदि ये अभी अपनी पसन्द का खा-पी और पहन नहीं सकेंगे तो कब खाएँगे और पहनेंगे।

''लेकिन यह तो सरासर फिजूलखर्ची है। हमारे परिवार की आर्थिक स्थिति इस योग्य नहीं है कि हम इतने महँगे कपड़े पहन सकें'' गुप्त जी ने कहा ''रही खाने पीने की उम्र वाली बात तो उन्हें मितव्ययिता अभी नहीं सिखाएँगे तो कब सिखाएँगे''।

अर्थाभाव वाली कठिनाई तो मैं दूर किए देता हूँ। मैं इसीलिए आपके पास आया हूँ। यह कहते हुए आगन्तुक मित्र ने पाँच हजार रुपये उनकी चौकी पर रख दिए।

यह देखकर गुप्तजी ऐसे चौंके, जैसे सैकड़ों साँप-बिच्छू उनके शरीर पर रेंग गए हों । गुप्तजी ने विस्मय, विस्फारित नेत्रों से मित्र महोदय की ओर देखते हुए कहा, क्या मतलब?

मित्र ने कहा- ''यह तो आपको मालूम ही है कि यहाँ की फौजदारी अदालत में दो धनिकों के बीच मुकदमा चल रहा है। दोनो पक्षों के सनसनी पूर्ण विवरणों द्वारा अपने पत्र में उनका आप समर्थन करें तो उन्हें लाभ हो सकता है। इसी के लिए मैं उनकी ओर से यह भेंट आपके पास लाया हूँ। ''

गुप्तजी ने धीरे पर गम्भीर स्वरों में कहा ''मित्र! तुम गलत समझे हो। अगर अर्थोपार्जन मेरा ध्येय रहा होता तो आप जो अभी चारों ओर घूर-घूर कर देख रहे थे और मेरी गरीबी पर आश्चर्य कर रहे थे वह न होता । गरीबी मेरी शान है। मैने स्वेच्छा से इसका वरण किया है, कारण कि मैं भारत के आम नागरिक से एक होकर जीना चाहता हूँ। उसके दु:ख -दर्द के समझने, अनुभव करने की ललक है। यही अनुभव मेरे साहित्य को प्राण देते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो गरीबी मेरा प्राण है । वह भी अन्याय की खातिर-कदापि सम्भव नहीं । '' गरीबी की गरिमा का गान सुनकर मित्र अपना रुपया उठाकर चलते बने और गुप्त जी पुन: लेखन में व्यस्त हो गए।

अभ्यास

1. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने वृद्धा को अपनी रॉयल्टी के सारे पैसे किस भाव से दिए थे?
2. 'ग़रीबों का मसीहा' कहानी से हमें क्या शिक्षा मिलती है?
3. आपके मतानुसार निराला जी को रॉयल्टी के सारे पैसे देने का निर्णय सही था या गलत कारण सहित बताइए?
4. ''अर्थोपार्जन मेरा ध्येय नहीं हैं, गरीबी मेरी शान है।'' इस कथन के भाव अपने शब्दों में लिखिए।
5. बालमुकुन्द जी भारत के एक आम नागरिक का जीवन जीना चाहते थे। कहानी के आधार पर वर्णन कीजिए।

योग्यता विस्तार

1. ''मानवता ह्दय की विशालता से आती हैं, भौतिक सम्पन्नता से नहीं।'' आज के सन्दर्भों में आप इस बात से कहाँ तक सहमत हैं? आलेख लिखिए।
2. स्वाभिमान के साथ मूल्यों को जीवन में आत्मसात करने के भाव पर आधारित कहानी एवं लघु नाटिका तैयार कीजिए ।
3. प्रतिष्ठित एवं अग्रणी कवि/लेखकों/पत्रकारों के प्रेरक प्रसंगों का संकलन कीजिए।

* * *

अध्याय
11

समय का मोल

– डॉ. गुलाब कोठारी

जब व्यक्ति स्वयं अपने जीवन का मोल नहीं समझता, उसको बनाए रखने के प्रयास नहीं करता, तब दुनिया में कौन दूसरा उसके लिए चिन्तित होगा? जीवन–मूल्यों का कार्य जीवन का मूल्य बनाए रखना है।

आज व्यक्ति सुबह से शाम तक इतना व्यस्त प्रतीत होता है कि उसे कहीं रुककर यह सोचने का समय भी नहीं है कि उसका रास्ता उसके लिए आगे जाकर सही निकलेगा या नहीं । मार्ग भटक जाने पर रुक कर किसी राहगीर से पूछा भी जाता है लेकिन आज पूछँना भी अपने आप में एक शर्म की बात लगती है।

मुझे किसी ने खाने पर बुलाया और मैं चला गया। किसी ने सिनेमा देखने की बात छेड़ी और मैंने हाँ भर दी। टीवी चलाया और बटन दबाते–दबाते 15–20 मिनट लगा दिए। गप्पें मारने बैठे तो घड़ी देखना ही भूल गए। पन्द्रह मिनट मिलने को गए और दो घंटे लग गए। इससे यह स्पष्ट है कि हमें हमारे समय की कीमत का भी एहसास नहीं है। हम कहते हैं जवानी बार–बार नहीं आती। जीवन का मक्खन कहते हैं इसको। जो कुछ इस उम्र में बोते हैं, उसी का फल पूरी उम्र में खाते हैं। इसका तो एक–एक पल कीमती है। और, हम घंटों लगा देते हैं ऐसे कामों में जहाँ इसकी कीमत ही नहीं रहती।

टी.वी. तो चला दिया, किन्तु यह पता नहीं है कि देखना क्या चाहते हैं। दुकान में घुस गए, यह नहीं मालूम कि क्या खरीदना है। दोस्तों में बैठ गए, विषय का अनुमान ही नहीं है। आवश्यक और अनावश्यक के बीच कोई भेद–रेखा ही नहीं है। अच्छे और बुरे की कोई परिभाषा हमें याद नहीं है। लाभ –हानि की अवधारणा यहाँ लागू ही नहीं होती। जैसे, एक व्यापारी दो लाख बचाने में लगा रहता है और 200 करोड़ की लागत पर उसकी आँख ही नहीं जाती।

हमने जवानी को मनोरंजन बना दिया। अवकाश की अवधारणा से जोड़ दिया। यह काल तो तपने का है। निखरने का है। उफान होना चाहिए। शिखर छूने से कम कुछ सोचना ही क्यों चाहिए? सर्वश्रेष्ठ काल को सर्वश्रेष्ठ उपयोग में लेना चाहिए। यदि यह जागरूकता नहीं है तो सही बुद्धि का अभाव है। पशु की तरह शरीर में ही उलझकर रह जाएँगे। शिखर के बजाए तलहटी में ही जीवन कट जाएगा।

जिस प्रकार बिना भूख लगे खाने से कष्ट हो जाता है, उसी प्रकार प्रसन्न मन को रंजन में लगा देने का भी अच्छा परिणाम नहीं आता। मन भटक जाता है, प्रमादी हो जाता है। जब मन दुःखी हो, बोझ से दबा हो, अवसादग्रस्त या थका हो, तभी मनोरजंन की आवश्यकता होती है। आज जिस प्रकार रंजन हो रहा है वह तो मन तक पहुँचता ही नहीं। तब, क्या हम शरीर का रंजन करते हैं?

आज मनोरंजन के नाम पर एक छटपटाहट देखी जा सकती है। जिस स्तर का मनोरंजन होने लगा है उससे तो जीवन का मूल्य ही घट रहा है दूसरी ओर हम अच्छे कैरियर के सपने भी देखते हैं दोनों में संतुलन कहाँ दिखाई पड़ता है?

शायद सारा मनोरंजन जीवन के महत्व को कम करने वाला रह गया है। हमें चिन्तनशील विषय पढ़ने–देखने में अच्छे लगते ही नहीं जो संगीत मन को गहराइयों को छूता है, वह हमारे काम का ही नहीं। सिनेमा, फैशन आदि ऐसे विषय नहीं हैं कि जिन पर घंटों चर्चा की जाए। अखबार मैगजीनों का चटपटापन जीवन में प्रतिदिन मानस को दूषित करता है, धीमे विष की तरह। हम पसीने की कमाई खर्च करके विष खरीदते हैं। यही हाल सिनेमा का हो गया है।

आज हमारी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ गंभीरता से दूर होने लगीं। न अच्छा देखते हैं, न अच्छा सुनते हैं, अच्छा खाते भी नहीं । अनावश्यक सामग्री ने हमें चारों ओर से घेर रखा है। हमारा ज्ञान इस आवरण को तोड़ ही नहीं पाता। क्या ज्ञान और शिक्षा की यही परिभाषा है? यह ऐसा कारण हैं कि हमें जीवन की दिशा का भान ही नहीं हो पाता है। हम जीवन का उद्देश्य ही तय नहीं कर पाते। इसके बिना मार्ग कहाँ तय होगा ?

लेकिन, इतना तो हम आज ही तय कर सकते हैं कि हम अनावश्यक कुछ नहीं करेंगे। अनावश्यक सुनेंगे नहीं, देखेंगे नहीं, खाएँगे नहीं, छूने और सूँघने से भी दूर रहेंगे। समय को रचनात्मक रूप में ही काम लेंगे। समय लौट कर नहीं आता। समय ही तो जीवन है। इसको दूसरों की मर्जी पर छोड़ा भी नहीं जा सकता। किसी को यह अधिकार नहीं है कि मेरे जीवन का हिस्सा बेकार कर दे।

तो आओ, संकल्प करें, जीवन को सार्थकता देंगे। ऊँचे सपने देखेंगे जवानी फिर लौटकर नहीं आएगी। जीवन को ऊँचाइयाँ देने का यही समय है। कई असुर शक्तियाँ हमारे मार्ग मे आएँगी। हमें उनसे लड़ते हुए आगे बढ़ना है। उनके मायाजाल में फँसना नहीं है। यह तो हार होगी। इस उम्र में हार कैसे स्वीकार हो सकती है ? हमें तो कुछ कर गुजरना हैं जीवन को पहचान देनी है।

आज प्रबंधन के गुरू कहते हैं कि जो कुछ करो, परिणाम को ध्यान में रखकर करो। यही बात तो आपके कार्यों को और जीवन को सार्थकता देती है। परिणाम ही लक्ष्य बनता है, उसी तरह का मन में वातावरण बनाया जाता है, उसी तरह का व्यक्तित्व बन जाता है। अतः जीवन का एक लक्ष्य तो यह होना ही चाहिए–घटिया विषय से दूरी और सर्वश्रेष्ठ का चुनाव : "जो कुछ गंधी दे नहीं, तो भी वास सुवास।"

अभ्यास

1. लेखक ने यौवन को जीवन का मक्खन क्यों कहा है ?
2. लेखक ने ऐसा क्यों कहा है कि "शिखर के बजाए तलहटी में ही जीवन कट जाएगा।"
3. "हम पसीने की कमाई खर्च करके विष खरीदते हैं। " इस पंक्ति से लेखक का क्या आशय है।
4. प्रबंधन के गुरू की बात जीवन को किस प्रकार सार्थक बनाती है ?
5. जीवन का लक्ष्य क्या होना चाहिए ?
6. व्यक्तित्व विकास कैसे होता है ?

योग्यता विस्तार

1. उन महापुरुषों के प्रसंग संकलित कीजिए जिनके जीवन में समय का महत्व दिखायी देता है।
2. अपनी दिनचर्या की सार्थकता पर एक लेख लिखिए।
3. उन कार्यों की सूची बनाइए जिन्हें आप निर्धारित समय –सीमा में करते हैं।
4. समय के महत्व से संबंधित कविताओं, कहानियों का संकलन कीजिए। उन्हें बाल सभा में सुनाइए।

* * *

आपकी कक्षा में कुछ दिव्यांग बच्चे हैं उनकी मदद करें :-

1

दृष्टिहीन बच्चे के लिए..... नाम लेकर पुकारें! 'ए' या 'तुम' कहने से वह बौखला जाते हैं। उन्हें स्कूल के गेट से लेकर सभी रास्तों से परिचित करा दें। कक्षा से शौचालय तक-
प्रधान अध्यापक के कमरे तक-
और खेल के मैदान तक।

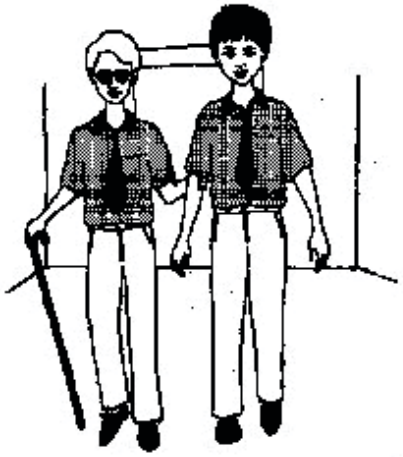

2

दूसरा बच्चा सुन नहीं सकता और शायद बोलता भी न हो। उससे जब बात करें, या पढ़ायें, तो उसकी तरफ मुंह करके बोलें। ताकि वह आपके होंठ पढ़ सके और इशारे समझ सके।

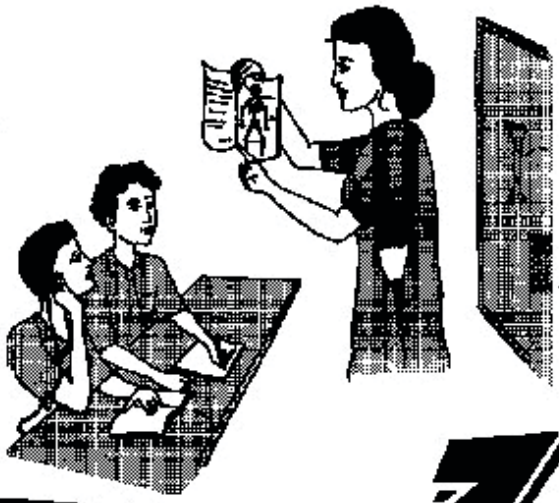

3

एक तीसरा बच्चा भी है जिसके अंग उसके बस में नहीं - लेकिन दिमाग उसके काबू में है। वह वहीं व्हील चेयर पर बैठा है। उस पर हंसे नहीं, बल्कि हर जगह सीढ़ियों के स्थान पर चढ़ाई-उतराई के लिए रैंप बनवायें।